

अध्याय 5: कर्मसंन्यासयोग

सच्चा संन्यास, कर्मयोग का समन्वय और नवद्वार पुरी का रहस्य | कुल श्लोक: 29

श्रीमद्भगवद्गीता का पाँचवाँ अध्याय 'कर्मसंन्यासयोग' (Karmasannyasa Yoga) साधना के दो सबसे प्रमुख मार्गों—ज्ञान संन्यास और निष्काम कर्मयोग—के बीच उठने वाले अंतिम संशय का संपूर्ण समाधान करता है। चौथे अध्याय के अंत में श्रीकृष्ण ने एक ओर ज्ञान रूपी तलवार से संशय को काटकर कर्म में प्रवृत्त होने (युद्ध करने) को कहा, तो दूसरी ओर ज्ञानयज्ञ और कर्मों के संन्यास की महिमा गाई। अर्जुन पुनः धर्मसंकट में पड़ जाते हैं कि त्याग बड़ा है या कर्म? यह अध्याय स्पष्ट करता है कि संन्यास कपड़ों या स्थान का नहीं, बल्कि मानसिक आसक्ति के परित्याग का नाम है।

अध्याय 5 का केंद्रीय सार: जो व्यक्ति न किसी से द्वेष करता है और न किसी की व्यर्थ आकांक्षा करता है, वह गृहस्थ में रहकर, निरंतर कर्म करते हुए भी नित्य संन्यासी ही है। वास्तविक संन्यास कर्मों से भागना नहीं, बल्कि कर्मों के अहंकार से मुक्त होना है।

1. अर्जुन का पुनः प्रश्न: संन्यास श्रेष्ठ है या कर्मयोग?

अर्जुन श्रीकृष्ण से अत्यंत स्पष्ट और दो-टूक शब्दों में निर्णय माँगते हैं:

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥५.१॥

सरल अर्थ: अर्जुन ने कहा — हे कृष्ण! आप एक ओर कर्मों के संन्यास (ज्ञानपूर्वक त्याग) की प्रशंसा करते हैं और फिर निष्काम कर्मयोग की प्रशंसा करते हैं। इसलिए इन दोनों में से जो मेरे लिए परम कल्याणकारी और निश्चित रूप से श्रेयस्कर हो, वह एक मार्ग मुझे बताइए।

भगवान श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं कि कर्म संन्यास (ज्ञानमार्ग) और कर्मयोग—दोनों ही परम पद (मोक्ष) तक ले जाने वाले हैं। परंतु साधक के लिए कर्म संन्यास की तुलना में **कर्मयोग सुगम और श्रेष्ठ** है:

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥५.२॥

सरल अर्थ: श्रीभगवान बोले — कर्मसंन्यास और कर्मयोग दोनों ही परम कल्याण करने वाले हैं; परंतु उन दोनों में भी कर्मसंन्यास की अपेक्षा निष्काम कर्मयोग साधन में सुगम होने के कारण श्रेष्ठ है।

2. संन्यास और कर्मयोग का तात्त्विक एकत्व

श्रीकृष्ण समझाते हैं कि केवल अज्ञानी लोग ही सांख्य (संन्यास) और योग (कर्मयोग) को अलग-अलग मानते हैं। जो तत्ववेत्ता हैं, वे जानते हैं कि दोनों का परिणाम एक ही है:

दृष्टिकोण	कर्म संन्यास (सांख्य / ज्ञानमार्ग)	निष्काम कर्मयोग (योगमार्ग)
साधना की विधि	विचार और विवेक द्वारा स्वयं को शरीर व प्रकृति से अलग देखना।	संसार में रहकर समस्त कर्तव्यों को ईश्वरार्पण भाव से करना।
कठिनाई का स्तर	चित्त शुद्धि के बिना अत्यंत कठिन और कष्टप्रद (दुःखमाप्नुमयोगतः)।	सहज, व्यावहारिक और गृहस्थ जीवन में भी तुरंत आचरण योग्य।
अंतिम उपलब्धि	परम शांति और आत्म-साक्षात्कार (मोक्ष)।	वही परम पद जो सांख्यियों को मिलता है (एकं सांख्यं च योगं च)।

श्लोक 5.6 में भगवान स्पष्ट चेतावनी देते हैं कि **"कर्मयोग के बिना संन्यास सिद्ध होना अत्यंत कठिन है।"** जब तक निष्काम कर्म से मन का मैल और वासनाएँ नहीं धुलतीं, तब तक गेरुआ वस्त्र धारण करने या जंगल जाने से कोई संन्यासी नहीं बन सकता।

3. कमल पत्र का उदाहरण: संसार में निर्लिप्त रहने की कला

गृहस्थ जीवन और नौकरी-व्यवसाय में रहते हुए व्यक्ति पाप और तनाव से कैसे बचे? इसके लिए श्रीकृष्ण सनातन साहित्य का सबसे प्रसिद्ध और सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं:

**ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥५.१०॥**

सरल अर्थ: जो पुरुष समस्त कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति का त्याग करके कर्तव्य करता है, वह पाप से उसी प्रकार लिप्त नहीं होता, जैसे कमल का पत्ता जल में रहकर भी जल से भीगता नहीं है।

कमल का फूल कीचड़ और गहरे पानी में खिलता है, परंतु जल की एक बूंद भी उसके पत्ते पर नहीं ठहरती। इसी प्रकार एक कर्मयोगी बाजार, परिवार, राजनीति और समाज की जटिलताओं में रहता है, परंतु वह अपने कर्मफल को ईश्वर को समर्पित कर देता है; इसलिए संसार का कोई भी विकार उसके अंतःकरण को स्पर्श नहीं कर पाता।

4. नवद्वार पुरी का रहस्य: शरीर में रहते हुए भी अकर्ता

श्लोक 13 में श्रीकृष्ण मानव शरीर की एक अद्भुत उपमा देते हैं। वे शरीर को **'नौ द्वारों वाला नगर' (नवद्वारे पुरे देही)** कहते हैं:

- **नौ द्वार:** दो आंखें, दो कान, दो नासिका छिद्र, एक मुख, एक गुदा और एक उपस्थ (जननेन्द्रिय)।
- **नगर का स्वामी:** इस नगर के भीतर बैठी हुई जीवात्मा (चेतना) वास्तव में स्वयं न कुछ करती है और न किसी से कुछ करवाती है।

**सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥५.१३॥**

सरल अर्थ: अपनी इंद्रियों को वश में रखने वाला देहधारी पुरुष मन से समस्त कर्मों का त्याग करके, इस नौ द्वारों वाले शरीर रूपी नगर में बिना कुछ किए और बिना करवाए परम सुखपूर्वक निवास करता है।

तत्वज्ञानी देखता है कि देखना, सुनना, स्पर्श करना, सूँघना, भोजन करना, चलना और श्वास लेना—ये सब इंद्रियाँ अपने-अपने विषयों में कर रही हैं। वह स्वयं को केवल एक 'साक्षी' (Observer) के रूप में देखता है, कर्ता के रूप में नहीं।

5. समदर्शी दृष्टि: ज्ञानी की दृष्टि में सब एक समान

जब ज्ञान परिपक्व हो जाता है, तो मनुष्य के भीतर से भेदभाव, जातिगत अहंकार, ऊँच-नीच और घृणा पूरी तरह समाप्त हो जाती है। अध्याय 5 का 18वाँ श्लोक आध्यात्मिक समता का सर्वोच्च घोषणापत्र है:

**विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥५.१८॥**

सरल अर्थ: ज्ञानी महापुरुष विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण में, गाय में, हाथी में, कुत्ते में और चांडाल में—सबके भीतर एक ही परमात्मा को समान रूप से देखने वाले (समदर्शी) होते हैं।

यहाँ 'समदर्शी' का अर्थ यह नहीं कि कुत्ते और गाय से एक जैसा व्यवहार किया जाए, बल्कि यह है कि बाह्य रूप, आकार, बुद्धि और सामाजिक स्थिति के भेद के बावजूद ज्ञानी पुरुष हर प्राणी के भीतर धड़क रही एक ही ईश्वरीय चेतना का दर्शन करता है। जिसके भीतर यह समभाव आ गया, उसने जीते-जी संसार को जीत लिया।

6. सांसारिक सुखों का कड़वा सच: 'दुःखयोनय एव ते'

मनुष्य जिन भौतिक भोगों और इंद्रिय सुखों के पीछे भागता है, श्रीकृष्ण उनकी असलियत का पर्दाफाश करते हैं:

**ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥५.२२॥**

सरल अर्थ: हे कौन्तेय! जो भोग इंद्रियों और विषयों के संयोग से उत्पन्न होते हैं, वे निश्चय ही केवल दुःखों के कारण (योनि) हैं। वे आदि और अंत वाले (नश्वर) हैं; इसलिए बुद्धिमान और विवेकशील मनुष्य उनमें कभी रमण नहीं करता।

हर सांसारिक सुख का एक आरंभ होता है और एक अंत होता है। जब वह सुख समाप्त होता है, तो वह पीछे केवल तृष्णा, खालीपन और पीड़ा छोड़ जाता है। जो आनंद अपनी ही आत्मा के भीतर है, वही शाश्वत और अक्षय है।

7. काम-क्रोध के वेग को रोकना और ध्यान का द्वार

श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो मनुष्य इस शरीर को छोड़ने से पहले ही काम और क्रोध से उत्पन्न होने वाले तीव्र वेग को सहन करने में समर्थ हो जाता है, वही इस संसार में सच्चा सुखी और योगी है (श्लोक 5.23)।

अध्याय के अंत में (श्लोक 27-28) श्रीकृष्ण अगले अध्याय (ध्यानयोग) की प्रस्तावना रखते हुए कहते हैं कि बाहर के विषयों को बाहर ही छोड़कर, दोनों भौहों के बीच दृष्टि को स्थिर करके, नासिका में विचरने वाले प्राण और अपान वायु को सम करके, जो मुनि मोक्ष को अपना परम लक्ष्य मान लेता है, वह सदा मुक्त ही है।

8. अध्याय का उपसंहार: शांति का महामंत्र

पाँचवें अध्याय का अंतिम श्लोक (5.29) संपूर्ण साधना का फल प्रदान करने वाला 'शांति मंत्र' कहलाता है:

**भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥५.२९॥**

सरल अर्थ: मुझे समस्त यज्ञों और तपस्याओं का परम भोक्ता, संपूर्ण लोकों का महान ईश्वर और समस्त प्राणियों का अकारण परम हितैषी (सच्चा मित्र) जानकर, मनुष्य परम शांति को प्राप्त हो जाता है।

9. आधुनिक जीवन और युवाओं के लिए अध्याय 5 की सीख

- **काम छोड़कर भागना सॉल्यूशन नहीं है:** यदि करियर या परिवार में दबाव है, तो इस्तीफा देना या भाग जाना संन्यास नहीं है। समस्याओं के बीच रहकर निष्काम भाव से समाधान निकालना ही कर्मयोग है।
- **कमल जैसा जीवन (Lotus Mindset):** ऑफिस की राजनीति, समाज की नकारात्मकता और सोशल मीडिया के तनाव के बीच रहते हुए भी अपने अंतर्मन को उनसे अछूता रखें।
- **ईश्वर को अपना सच्चा मित्र मानें:** दुनिया के रिश्ते स्वार्थ पर टिके हो सकते हैं, परंतु श्रीकृष्ण हर प्राणी के 'सुहृद' (बिना शर्त प्रेम करने वाले सखा) हैं। उन पर भरोसा रखकर निर्भय बनें।

॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

Website: soniapanghal.com